IJAER/October-November 2012/Volume-1/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

भारतीय संविधान में लैंगिक न्याय एवं सुरक्षात्मक विभेद के प्रावधानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

मेहराज जहाँ, शोधार्थी, विधि विभाग, सी0 एम0 जे0 विश्वविद्यालय, शिलांग
डॉ0 मुकुल गुप्ता, प्रवक्ता, विधि विभाग, एस0 डी0 कॉलिज ऑफ लॉ, मुजफ्फरनगर (यू0पी0)

सार–

प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत भारतीय संविधान में सुरक्षात्मक विभेद के माध्यम से लैंगिक न्याय हेतु जो प्रावधान किए गए है उसकी विवेचना की गई है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत महिलाओं को पुरुषों के समान ही कानूनी, आर्थिक, राजनीतिक समानता प्रदान की गई है। मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत ही संविधान महिलाओं को स्वतंत्रता तथा शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त संविधान द्वारा नीति–निर्देशक तत्वों के रूप में भी स्त्री–पुरुष की समानता के आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। नीति–निर्देशक तत्वों में पुरुष एवं स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार, समान कार्य हेतु समान वेतन, काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध, इत्यादि प्रमुख उपबंधों का उल्लेख किया गया है। इन संवैधानिक प्रावधानों के उपरान्त यह प्रतीत हुआ कि भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा में उल्लेखनीय परिवर्तन होगा।

प्रस्तावना–

स्वतंत्रता आंदोलन के एक लम्बे संघर्ष के पश्चात भारत जब स्वतंत्र हुआ तब देश की राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था को पुनर्निमित करने की जिम्मेंदारी भारतीय संविधान सभा को दी गई। चूंकि संविधान किसी भी राष्ट्र का सम्बल होता है। किसी राज्य के संविधान को देखकर यह तय किया जा सकता है कि वहाँ की व्यवस्था कैसी होगी। एक मजबूत संविधान एक सुदृढ़ राष्ट्र की नींव रखता है। संविधान द्वारा नागरिकों को दिए गए अधिकार उस राज्य की सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था को प्रतिबिंबित करता है। इसी कड़ी में भारतीय संविधान सभा को यह अधिकार दिया गया कि वह एक ऐसा संविधान निर्मित करे जो भारतीय लोकतंत्र को सम्बल प्रदान करे तथा साथ ही साथ भारतीय समाज के कमजोर वर्गों को मुख्यधारा में ला सके। इस सन्दर्भ में भारतीय संविधान समानता तथा न्याय के आदर्शों को स्थापित करने के साथ राष्ट्रीय एकता तथा उन्नति को भी महत्व प्रदान करता है। संविधान एक ऐसे समाज के निर्माण पर बल देता है जिसमें एक मजबूत राष्ट्रीय अस्तित्व, भारतीय सांस्कृतिक विविधता को एक पहचान तथा समाज के वंचित वर्गों का उचित कल्याण निहित हो।[1]

भारतीय संविधान निर्माता एवं संविधान विशेषज्ञ इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि भारतीय समाज में महिलाओं की दशा सोचनीय है। सदियों से उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता रहा है। महिलाएं जन्म से ही अत्याचार, उत्पीड़न तथा दोहन की शिकार रही हैं। वे परिवार की सदस्य होते हुए भी सदैव उपेक्षा की पात्र बनी रही हैं। समाज में उनके कर्तव्य थे परन्तु अधिकार नहीं। ऐसे में भारतीय समाज

में स्त्री तथा पुरुष के बीच एक गहरी खाई रही है। इन वास्तविकताओं के साथ ही भारतीय संविधान निर्माता इस बात से भी परिचित थे कि महिलाओं की सहभागिता देश के लिए महत्वपूर्ण ही नहीं वरन अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि देश की आधी आबादी के विकास के बिना सम्पूर्ण देश का विकास किया ही नहीं जा सकता। इसी मंशा के साथ संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में स्त्री एवं पुरुष दोनों को ही बराबरी का दर्जा दिया। इसके साथ ही उन्होंने महिलाओं के उत्थान के लिए कुछ सुरक्षात्मक प्रावधान किए, जिन्हें संवैधानिक रूप से लागू किया गया।

भारतीय संविधान में लैंगिक न्याय एवं सुरक्षात्मक विभेद सम्बन्धी प्रावधान–

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता की बात कही गई है। साथ ही प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प लिया गया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही इस बात की झलक मिलती है कि स्वतंत्र भारत न्याय, स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्यों से शासित होगा। स्वतंत्र भारत में ऐसी व्यवस्था लागू करने का संकल्प लिया गया जिसमें सभी समान तथा स्वतंत्र रूप से अपने जीवन का निर्वाह करेंगे। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भारतीय संविधान में विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने का भी संकल्प किया गया है।

संविधान के भाग 3 में भारतीय नागरिकों के लिए मूल अधिकारों की व्याख्या की गई है। किसी भी प्रजातांत्रिक देश में मूल अधिकार मानव स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र के आधार स्तम्भ है। प्रजातांत्रिक समाज के संविधान में व्यक्तियों के मूल अधिकारों को शामिल किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। एक स्वतंत्र प्रजातांत्रिक देश में मूल अधिकार सामाजिक, धार्मिक तथा नागरिक जीवन के स्वतंत्रतापूर्वक निर्वाह हेतु एकमात्र साधन हैं। इसलिए लोकतंत्र के आदर्शों को प्राप्त करने तथा व्यक्ति के पूर्ण विकास हेतु मूल अधिकारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। आगे मौलिक अधिकारों के अर्न्तगत किए गए लैंगिक न्याय सम्बन्धी प्रावधानों का उल्लेख किया गया है।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत सर्वप्रथम समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि 'राज्य भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।' इसमें राज्य को यह जिम्मेंदारी दी गई है कि वह समानता के आदर्श को स्थापित करेगा। इस अनुच्छेद के माध्यम से प्रत्येक भारतीय नागरिक को चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष सभी को समान रूप से विधिक अधिकार प्रदान किए गए है। विधि के समक्ष समता का तात्पर्य व्यक्तियों के बीच पूर्ण समता से नहीं है, जो व्यवहार में संभव भी नहीं है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि जन्म, मूलवंश आदि के आधार पर व्यक्तियों के बीच विशेषाधिकार को प्रदान करने और कर्तव्यों के अधिरोपण में कोई विभेद नहीं किया जाएगा तथा प्रत्येक व्यक्ति देश की साधारण विधि के अधीन होगा। परन्तु साथ ही साथ विधि के समान संरक्षण के प्रावधान में ऐसे नागरिक जो असमान है अथवा ऐसे व्यक्ति जो प्रकृति, योग्यता या परिस्थिति के अनुसार समान स्थिति में नहीं हैं, उन वर्गों या व्यक्तियों की अलग–अलग आवश्यकताओं को देखते हुए उनके साथ पृथक् व्यवहार करने पर बल दिया गया है। इसी सन्दर्भ में महिलाओं

की स्थिति को देखते हुए उन्हें विधि का संरक्षण प्रदान करने पर बल दिया गया है। जैसे, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 497 जिसमें यह कहा गया है कि जारकर्म के अपराध के लिए पुरुष दण्डित किया जा सकता है किन्तु स्त्री को दोषी के रूप में दण्डित नहीं किया जा सकता, असंवैधानिक नहीं है। इसका कारण यह है कि भारतीय समाज में स्त्री की विद्यमान स्थिति को देखते हुए स्त्रियों को संरक्षण देना आवश्यक बताया गया।

अनुच्छेद 15 के अनुसार 'राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।' विभेद शब्द से तात्पर्य किसी व्यक्ति के साथ दूसरों की तुलना में प्रतिकूल व्यवहार करना है। यदि कोई कानून उपर्युक्त किसी भी आधार पर विभेद करता है तो वह शून्य होगा। यहां 'केवल' शब्द का अर्थ है कि यदि विभेदकारी व्यवहार के लिए इस अनु0 द्वारा वर्णित आधार के अतिरिक्त कोई अन्य आधार या कारण है तो विभेद असंवैधानिक नहीं होगा।

अनुच्छेद 15(2) में यह प्रावधान किया गया है कि कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर–(क) दुकानों, सार्वजनिक भेजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या (ख) पूर्णतः या भागतः राज्य–निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग, के सम्बन्ध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बंधन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

अनुच्छेद 15(3) में स्त्रियों और बालकों हेतु विशेष व्यवस्था की गई है। इसके अन्तर्गत यह कहा गया है कि 'इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य की स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।'

अनुच्छेद 15(4) में यह प्रावधान किया गया है कि 'इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

अनुच्छेद 15 का प्रथम खण्ड राज्य को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी एक आधार पर भी किसी नागरिक के विरूद्ध असमानता का व्यवहार करने से रोकता है। वहीं दूसरा खण्ड यह उपबंध करता है कि केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर कोई नागरिक दुकानों, होटलों, मनोरंजक स्थानों, कुओं, तालाबों, घाटों, सड़कों एवं अन्य सार्वजनिक स्थान जो जनता के उपयोग के लिए समर्पित कर दिए गए हैं, अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य विधि द्वारा घोषित हैं, के उपयोग के सम्बन्ध में किसी शर्त, प्रतिबंध, उत्तरदायित्व एवं अयोग्यता से प्रभावित नहीं होगा। इस अनुच्छेद का तीसरा खण्ड राज्य को महिलाओं और बालकों के लिए विशेष प्रावधान करने की शक्ति प्रदान करता है। चौथा खण्ड राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए विशेष अवस्थाओं में विशेष व्यवस्था करने की अनुमति देता है। इस प्रकार अनुच्छेद 15 के चारों खण्ड भारत की महिलाओं के सुरक्षा कवच हैं। जहाँ एक तरफ प्रथम एवं द्वितीय खण्ड में संविधान ने लिंगभेद के आधार पर भेदभाव को संविधान विरूद्ध बताया है वहीं दूसरी तरफ तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड के द्वारा उनकी सुरक्षा और उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था का उपबंध किया गया है।

अनुच्छेद 16 में यह व्यवस्था की गई है कि 'राज्य के अधीन किसी पद नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।' अर्थात अनुच्छेद 16 में समानता के अधिकार के आधार पर ऐसी व्यवस्था की गई है कि राज्य के अधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी। इसके अतिरिक्त केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उदभव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक को राज्याधीन नौकरी या पद के विषय में न तो अपात्रता होगी और ना ही किसी भी प्रकार का विभेद किया जायेगा। संविधान के द्वारा किया गया यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रावधान है जिसके अन्तर्गत राज्य के अधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सन्दर्भ में स्त्री या पुरुष के मध्य किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। दोनो ही सरकारी नौकरियों में नियुक्ति, पदोन्नति, इत्यादि हेतु समान रूप से चुने जायेगें।

संविधान द्वारा प्रदत्त यह मौलिक अधिकार जहाँ एक तरफ स्त्रियों के काम के अधिकार की पुष्टि करता है, वहीं दूसरी तरफ समाज के परम्रागत रुढ़िवादी विचारों का खण्डन करता है। जिसके अन्तर्गत स्त्रियों को प्राचीन काल से ही गृहकार्यों हेतु ही सर्वगुणसम्पन्न माना जाता रहा है। परम्रागत तथा पितृसत्तात्मक विचारधारा में एक स्त्री को परिवार सम्भालने से लेकर परिवार के सदस्यों की उचित देखभाल का कार्य ही सौपा गया है। साथ ही स्त्रियों की शिक्षा दीक्षा भी इन्हीं कलाओं में निपुणता हेतु दिए जाने पर बल दिया जाता रहा है। परन्तु संविधान द्वारा स्त्रियों को सरकारी नौकरियों में पुरुषों के समान भागीदारी का अधिकार दिए जाने से समाज के स्त्रियों के प्रति परम्रागत स्वरूप में बदलाव की पृष्ठभूमि रखी गई।

इस प्रकार संविधान द्वारा प्रदत्त समानता का अधिकार लिंगभेद को समाप्त करने पर बल देता है। समाज में उपस्थित विभिन्न प्रकार के भेदभावों में लिंगभेद सबसे प्रबल है। यह वैश्विक स्तर पर व्याप्त भेदभाव है। लिंग आधारित भेदभाव विकसित–अविकसित, सभ्य–असभ्य समाजों में व्यापक या सूक्ष्म रूप में अवश्य मौजूद है। ऐसे में जब तक समान अवसरों को स्त्रियों के लिए व्यापक स्तर पर उपलब्ध नहीं कराया जाता तब तक किसी सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक उपलब्धि, समाज की शान्तिपूर्ण संरचना, सुरक्षित पोषणीय विकास की नींव नहीं रखी जा सकती। भारतीय संविधान भी इन्ही उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्त्री–पुरुष की समानता की स्थिति का पक्षधर है।

समानता के अधिकारों के साथ–साथ संविधान नागरिकों को स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान करता है। संविधान का अनुच्छेद 19 भारत के समस्त नागरिकों को 6 बुनियादी स्वतंत्रताएं प्रदान करता है। संविधान द्वारा इन बुनियादी स्वतंत्रताओं को स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही समान रूप से प्रदान किया गया है। ये स्वतंत्रताएं निम्नलिखित हैं–

1– भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता– भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किसी भी लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का आधार तत्व होता है। इस स्वतंत्रता के माध्यम से भारत का प्रत्येक नागरिक बिना किसी रोक–टोक के अपने विचारों, विश्वासों की अभिव्यक्ति कर सकता है। नागरिक सामाजिक तथा राजनीतिक मुद्दों पर विचार–विमर्श कर सकते है तथा अपनी राय दे सकते है। इसी के अन्तर्गत प्रेस की स्वतंत्रता भी अन्तर्निहित है। इस अधिकार के बिना, प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था के समुचित संचालन हेतु जनता की तार्किक एवं आलोचनात्मक शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही नागरिकों की भाषण एवं अभिव्यक्ति

की स्वतंत्रता पर राष्ट्र की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के हित में, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हित में, न्यायालय की अवमानना, मानहानि के मामलों में तथा राष्ट्र की सम्प्रभुता और अखंडता के हित में प्रतिबंध लगाए जा सकते है।

2– सम्मेलन की स्वतंत्रता– अनु0 19(ख) भारत के सभी नागरिकों को बिना हथियार के शान्तिपूर्ण सम्मेलन का अधिकार प्रदान करता है। इसके फलस्वरूप सार्वजनिक सभाए करने, प्रदर्शन करने तथा शान्तिपूर्ण जुलूस निकालने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वास्तव में यह अधिकार भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ही अंग है। क्योंकि जब तक सम्मेलन का अधिकार नहीं होगा तब तक व्यक्ति अपने विचारों का अदान–प्रदान नहीं कर सकतें। इस अधिकार पर भी लोक व्यवस्था के हित में उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते है।

3– संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता– अनु0 19(ग) के अन्तर्गत भारत के सभी नागरिकों को संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इस अधिकार के अन्तर्गत भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को राजनीतिक दल, समीतियां, क्लब, कंपनियां, संगठन, मजदूर संघ, इत्यादि संगठनों के निर्माण का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार पर भी लोक व्यवस्था के हित में सरकार द्वारा उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते है।

4– भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रता– अनु0 19(घ) भारतीय नागरिकों को समस्त भारत में अबाध रूप से संचरण करने का अधिकार प्रदान करता है। नागरिक भारतीय संघ के किसी भी राज्य में जा सकता है। इस प्रकार भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र एक इकाई के सदृश्य है।

5– भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने तथा बस जाने की स्वतंत्रता– अनु0 19(ड़) के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय नागरिकों को भारत में कहीं भी बसने या आवास बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। निवास की स्वतंत्रता तथा भ्रमण की स्वतंत्रता, दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं तथा दोनों का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की स्थापना करना है।

6– वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता– अनु0 19(छ) के अन्तर्गत भारत के सभी नागरिकों को कोई भी कारोबार या व्यापार करने का अधिकार है। इस अनु0 के द्वारा राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार चलाने हेतु नागरिकों को आवश्यक सहयोग करे।

स्वतंत्रता के उपरोक्त अधिकार भारत के समस्त नागरिकों को समान रूप से प्रदान किए गए है, इसमें स्त्रियों या पुरुषों में किसी प्रकार का कोई विभेद नहीं किया गया है। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है। लैंगिक न्याय की दृष्टि से यह प्रावधान अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतीय स्त्रियाँ सदियों से परतंत्र रही हैं। पारिवारिक क्रियाकलापों के अतिरिक्त उनकी और किसी भूमिका पर समाज ने अंकुश लगा रखा था। उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र तो क्या पारिवारिक क्षेत्र में भी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी। ऐसे में संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता का अधिकार महिलाओं के हित में अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अपरिहार्य है। स्वतंत्रता के ये विभिन्न अधिकार महिलाओं को यह प्रतीत कराते हैं कि वे भी एक स्वतंत्र नागरिक हैं तथा समाज में उनका भी एक स्वतंत्र अस्तित्व है।

अनुच्छेद 21 यह व्यवस्था करता है कि 'किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।' किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण

एवं दैहिक स्वतंत्रता से वंचित किए जाने सम्बन्धी प्रक्रिया भी उचित एवं युक्तिसंगत होनी चाहिए। गोपालन मामले में वैयक्तिक स्वतंत्रता का अर्थ केवल व्यक्ति के शरीर से सम्बन्धित स्वतंत्रता से लगाया गया था। इसके अन्तर्गत केवल कार्यपालिका की मनमानी कार्रवाई के विरूद्ध संरक्षण आता था। लेकिन बाद में इसके परिक्षेत्र का विस्तार करते हुए इसमें विधायी कार्रवाई के विरूद्ध संरक्षण को भी समाविष्ट किया गया तथा अनु 19(1) में वर्णित स्वतंत्रता के अधिकारों को, जो कि व्यक्ति को वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं, इसके अन्तर्गत रख दिया गया। आगे चलकर मेनका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने गोपालन केस को नामंजूर कर दिया और विचार व्यक्त किया कि न्यायालय को न्यायिक अर्थान्वयन की प्रक्रिया के द्वारा मूल अधिकारों के अर्थ सन्दर्भ को क्षीण करने के स्थान पर उनके प्रभावक्षेत्र तथा परिक्षेत्र का विस्तार करने का प्रयास करना चाहिए। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि जीवित रहने का अधिकार केवल शारीरिक अस्तित्व तक ही सीमित नहीं है बल्कि मानवीय गरिमा के साथ जीवित रहने का अधिकार भी उसके परिक्षेत्र में आता है।

अनुच्छेद 21 में मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीने का अधिकार व्यक्ति के अस्तित्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकार है। इसके अन्तर्गत कोई भी ऐसा कार्य जो मानवीय गरिमा का खण्डन करता हो, उसका निषेध किया गया है। महिलाओं के हित में भी यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रावधान है क्योंकि जहाँ एक तरफ दैहिक स्वतंत्रता के प्रावधान से महिलाओं को अनेक प्रकार के शोषण से बचाने का लक्ष्य संविधान निर्माताओं द्वारा रखा गया है। वहीं मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीने के प्रावधान से महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध किसी भी कार्य या व्यवहार को दण्डनीय घोषित किया गया है। ऐसे में यह अनुच्छेद महिलाओं को समाज में सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार प्रदान करता है।

इसी क्रम में अनु0 23(1) में कहा गया है कि 'मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।' समाज में मानव व्यापार तथा बेगार ऐसे अपराध हैं जिनसे महिलाएं तथा बच्चे पीड़ित होते हैं। इससे पीड़ित व्यक्ति के जीवन का अधिकार, मान–सम्मान, सुरक्षा, इत्यादि का हनन किया जाता है। मानव दुर्व्यापार की शिकार महिलाओं का जबरदस्ती यौन शोषण किया जाता है। समाज के अन्दर यह बहुत बड़े पैमाने पर घटित होता है। इसके अन्तर्गत महिलाओं का देश और विदेशों में वस्तुओं की भांति आयात–निर्यात किया जाता है। अनु0 23 समाज में किसी भी प्रकार के मानव व्यापार को प्रतिबंधित करता है। इसके अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं होगा कि वह किसी महिला का व्यापार करे तथा उनका खरीद–फरोख्त करे। संविधान द्वारा ऐसे घृणित कार्य को दण्डनीय घोषित किया गया है।

भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता के पश्चात दुनिया के विशालतम लोकतंत्र का सृजन करने वाले भारतीय संविधान निर्माताओं ने समरसता एवं शोषणविहीन समतामूलक समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा। इस लक्ष्य को पूरा करने हेतु आवश्यकता इस बात की थी कि समाज में सभी प्रकार के विभेदों को समाप्त किया जाए। असमानता तथा विभेदों को समाप्त किए बिना एक समतामूलक समाज की स्थापना नहीं की जा सकती है। इन आशयों से ही भारतीय संविधान में लैंगिक विभेदों को अस्वीकार करते हुए स्त्री–पुरुष समानता को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित किया।

मौलिक अधिकारों के सन्दर्भ में नीरा देसाई का कथन है कि 'भारतीय संविधान की यह घोषणा निस्संदेह अनेक वर्षों से चले आ रहे सामन्तवादी व्यवस्था एवं सामाजिक जीवन के अध्याय को समाप्त करती है।'

मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त भारतीय संविधान में नागरिकों के कल्याण हेतु राज्यों को भी कुछ दिशानिर्देश दिए गए है, जिन्हें नीति–निर्देशक तत्वों के रूप में जाना जाता है। नीति–निर्देशक तत्वों का प्रावधान इसलिए किया गया कि राज्य अपनी नीतियों को लागू करते समय इन तत्वों में नीहित आदर्शों को स्थापित करने का प्रयास करेगें। संविधान निर्माताओं ने नीति–निर्देशक तत्वों के रूप में भी स्त्री–पुरुष की समानता के आदर्श को स्थापित किया है। इसके पीछे कानूनी शक्ति नहीं दी जा सकी, क्योंकि राजनैतिक और सामाजिक परिवेश इसके अनुकूल नहीं था। परन्तु आने वाली सरकारों के लिए यह निर्देश के रूप में स्थापित किये गए, जिसे सरकार अपना कर्त्तव्य भी समझे। इसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि राज्य अपनी नीति का निर्माण करते समय इन बातों का ध्यान रखे।

नीति–निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 39(क) के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि 'पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।' इस अनुच्छेद के माध्यम से भारतीय संविधान ने इस आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया है कि स्त्रियाँ पुरुषों के ही समान है और उनके समान ही कार्य भी कर सकती है। इस प्रावधान ने समाज में सदियों से स्थापित इस मान्यता को कि स्त्रियों का कार्य केवल घर तक सीमित है और बाहर के काम पुरुषों के लिए है, का खण्डन करते हुए एक ऐसे समाज के निर्माण पर बल दिया है जिसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों मिलकर समाज के विकास में अपना योगदान दे सकें। इस अनुच्छेद के माध्यम से महिलाओं के लिए आर्थिक स्वतंत्रता का लक्ष्य भी रखा गया।

अनुच्छेद 39(घ) में कहा गया कि 'पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो।' यह प्रावधान संविधान द्वारा स्त्री–पुरुष के बीच के विभेद को समाप्त करने हेतु उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। भारतीय समाज में स्त्रियों के काम को सदैव कम महत्व दिया जाता रहा है। साथ ही पुरुषों के मुकाबले उनको वेतन भी कम ही दिया जाता था। परन्तु इस अनु0 के माध्यम से समान कार्य हेतु स्त्री–पुरुष के बीच वेतन विसंगतियों को समाप्त करके दोनों के लिए ही समान वेतन प्रदान करने पर बल दिया गया है।

अनुच्छेद 39(ड़) के अन्तर्गत व्यवस्था की गई कि 'पुरुष तथा स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।' स्त्रियों और बालकों के हित में उठाया गया यह एक महत्वपूर्ण कदम है। चूँकि स्त्रियों का शारीरिक बल पुरुषों की अपेक्षा कम होता है, साथ ही उनकी जैविक संरचना भी ऐसी है जिसमें उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में इस प्रावधान के द्वारा उनकी क्षमता के अनुसार ही उनसे काम लिए जाने पर बल दिया गया है।

अनुच्छेद 42 के अन्तर्गत 'राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।' यह प्रावधान राज्य के कल्याणकारी तथा मानवीय स्वरूप को दर्शाता है। जिसके अन्तर्गत काम करने की ऐसी परिस्थितियों के निर्माण पर बल दिया गया है जो मानवीय दृष्टिकोण के अनुकूल हों। विशेषरूप से इस प्रावधान के माध्यम से स्त्रियों के प्रति कल्याणकारी दृष्टिकोण

अपनाते हुए ऐसी परिस्थितियों के निर्माण पर बल दिया गया है जो सर्वथा उनके हित में हो। इससें स्त्रियों में कार्य के प्रति भागीदारी को भी बढ़ाया जा सकता है। साथ ही अपने अनुकूल काम की परिस्थितियों के कारण स्त्रियाँ अधिक से अधिक मात्रा में काम के प्रति प्रोत्साहित होंगी।

अनुच्छेद 44 के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि 'राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।' संविधान द्वारा राज्यों को यह जिम्मेंदारी सौपी गई है कि वह संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के सिद्धान्त को स्थापित करने हेतु तथा सभी के लिए समान न्याय को सुनिश्चित करने हेतु एक समान नागरिक संहिता को लागू करेगा। इस प्रावधान के द्वारा सम्पूर्ण भारत में सभी धर्मों तथा समुदायों के लिए एक ही कानून होगा। एकसमान कानून होने से विभिन्न धर्मों में नीजि कानूनों के नाम पर स्त्रियों के साथ होने वाला दोहरा व्यवहार समाप्त किया जा सकेगा। जो कि लैंगिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

नीति–निर्देशक तत्वों के अतिरिक्त भारतीय संविधान में नागरिकों हेतु कुछ मौलिक कर्त्तव्य भी निर्धारित किए गए है। जिसमें अनुच्छेद 51क(ड़) में यह व्यवस्था की गई है कि 'भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।' चूंकि भारतीय समाज में ऐसे अनेक मानदण्ड रहे हैं जो समय–समय पर स्त्रियों के सम्मान को ठेस पहुँचाते रहे रहे है। चाहे वे समाज के द्वारा बनाए गए रुढ़िवादी नियम या परिवार के द्वारा बनाए गए पितृसत्तात्मक मूल्य, सभी में अनेक ऐसे बिन्दु निर्धारित होते है जो स्त्रियों के अस्तित्व तथा सम्मान के विरूद्ध खड़े होते है। इन बिन्दुओं को परम्रागत तथा पालन करने योग्य बनाने हेतु प्रथा का रूप दे दिया जाता है। प्रथा रूप में होने के कारण इनका पालन अनिवार्य हो जाता है और जो इन प्रथाओं का पालन नहीं करना चाहता उन्हें समाज का दण्डात्मक स्वरूप झेलना पड़ता है। इस अनुच्छेद के माध्यम से भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया गया है। जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी प्रथाओं के निषेध की बात की गई है जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हो। इस अनु0 के माध्यम से समाज में स्त्रियों के सम्माननीय अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

अनुच्छेद 325 के अन्तर्गत व्यवस्था की गई कि 'संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के निर्वाचन के लिए, प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी और केवल, या धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र नहीं होगा, या ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिए किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किए जाने का दावा नहीं करेगा।' निर्वाचन का अधिकार तथा निर्वाचित होने का अधिकार किसी भी लोकतांत्रिक समाज का अपरिहार्य तत्व है। इसके बिना राजनीतिक अधिकारों का भी कोई औचित्य नहीं है। अतः भारतीय संविधान में भी भारत के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के निर्वाचन हेतु समान अधिकार प्रदान किए गए है। साथ ही इस अनुच्छेद द्वारा संविधान निर्माताओं ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि भारत में पुरुष और स्त्री को समान मतदान अधिकार प्रदान किए गए है। साथ

ही निर्वाचित होने के लिए भी धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग इनमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। सभी नागरिक निर्वाचित होने के लिए बराबर के पात्र होंगे।

संविधान द्वारा महिलाओं के हित में किए गए संवैधानिक प्रावधान भारतीय महिलाओं को सदियों से जकड़ी हुई दासता की स्थिति से निकालने का प्रयत्न करते है। इस सन्दर्भ में संविधान की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है–

1– भारतीय संविधान महिलाओं तथा पुरुषों में लैंगिक भेदभाव मिटाने की मंशा रखता है। मौलिक अधिकारों के माध्यम से संविधान द्वारा महिलाओं तथा पुरुषों को समान रूप से अधिकार प्रदान करके, इस बात की पुष्टि की गई है कि स्वतंत्र भारत में स्त्रियों तथा पुरुषों में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में महिलाएं पुरुषों के समान ही अपनें सभी अधिकारों का उपभोग करेगीं।

2– संविधान इस बात को स्वीकार करता है कि महिलाओं को पारंपरिक रूप से प्रताड़ित किया गया है तथा हीन समझा गया है। इस अन्याय को समाप्त करने हेतु संविधान सरकार को महिलाओं के हित में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है।

3– संविधान निहित रूप से यह विश्वास रखता है कि सरकार समाज के सभी कमजोर वर्गों, जिसमें महिलाएं सम्मिलित हैं, की स्थिति सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न करेगी। ऐसे में संविधान सामाजिक न्याय के विचार की पुष्टि करता है। साथ ही समाज के सभी कमजोर वर्गों के वास्तविक उत्थान हेतु कल्याणकारी कार्यक्रमों पर बल देता है।

लैंगिक न्याय से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि संविधान निर्माताओं ने स्त्री को भारतीय लोकतंत्र तथा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के सक्रिय सदस्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। स्त्री को निजी क्षेत्र से बाहर लाने तथा सार्वजनिक क्षेत्र में उसकी सहभागिता को सुनिश्चित करने की मंशा स्पष्ट रूप से इन संवैधानिक प्रावधानों में दृष्टिगत होती है। साथ ही संवैधानिक प्रावधानों में स्त्रियों को समाज में शोषित की भूमिका से बाहर निकालकर एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में जीवनयापन करने हेतु प्रतिबद्धता प्रकट की गई है। जिसके अन्तर्गत भारतीय महिलाएं सम्पूर्ण क्षेत्र में पुरुषों के समान ही अधिकारों का उपभोग करते हुए समाज के संचालन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगीं। इस प्रकार संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से प्राचीन काल से चली आ रही महिलाओं की दयनीय स्थिति में एक व्यापक तथा सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलता है। एक ऐसा परिवर्तन जो भारतीय महिलाओं की चेतना को एक नई दिशा प्रदान करता हो।

हालाँकि भारतीय संविधान महिलाओं के लिए विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से सुरक्षात्मक प्रावधान करता है परन्तु लैंगिक न्याय के दृष्टिकोण से इन प्रावधानों में कुछ कमियाँ भी हैं। जिससे भारतीय समाज में लैंगिक न्याय सम्पूर्णता की स्थिति प्राप्त नहीं कर सका है। इन कमियों का उल्लेख निम्नलिखित रूपों में किया जा रहा है–

प्रथम– भारतीय संविधान में समानता के विभिन्न अधिकारों के अन्तर्गत समाज में व्याप्त भेदभावों को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। परन्तु वास्तविकता यह है कि समानता को संविधान में परिभाषित ही नहीं

किया गया। सामान्यतया समानता को औपचारिक तथा वास्तविक दो स्वरूपों में व्यक्त किया जाता है। जहाँ औपचारिक समानता से तात्पर्य समान परिस्थितियों में समान कानून लागू करने तक सीमित होती है, वहीं वास्तविक समानता प्रत्येक प्रकार की असमानता को समाप्त करके समानता की स्थिति उत्पन्न करना होता है। वास्तविक समानता लाने हेतु व्यक्तिगत तथा संस्थागत दोनों ही स्तरों पर कमजोर वर्गों के साथ किए जाने वाले भेदभावों को समाप्त करना होता है।

ऐसे में भारतीय संविधान में वर्णित समानता के विभिन्न अधिकारों के अन्तर्गत स्त्री–पुरुष के बीच व्याप्त असमानता तथा भेदभावों को समाप्त करने हेतु तथा वास्तविक समानता स्थापित करने हेतु कोई ठोस प्रावधान दृष्टिगत नहीं होता है। जैसे संविधान में अल्पसंख्यक वर्गों, दलित वर्गों तथा पिछड़े वर्गों के लिए आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से आरक्षण की व्यवस्था की गई है, परन्तु इस बात का भलीभाँति ज्ञान रहते हुए कि महिलाएं समाज का एक पिछड़ा वर्ग है, उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था नहीं की गई। हालाँकि अनु0 15(3) में स्त्रियों के हित में राज्य को कुछ अलग प्रावधान करने की अनुमति प्रदान की गई है, परन्तु वह भी बाध्यकारी नहीं है बल्कि राज्य की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह इन प्रावधानों को लागू करे या नहीं। संविधान द्वारा इस सन्दर्भ में कोई बाध्यकारी प्रावधान नहीं किया गया।

द्वितीय– जहाँ एक तरफ मौलिक अधिकारों में वर्णित विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से स्त्री–पुरुष के बीच समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया। वहीं दूसरी तरफ धर्म के आधार पर बने पारिवारिक कानूनों को मान्यता प्रदान करके स्त्री–पुरुष समानता के सम्पूर्ण विचार को ही खारिज कर दिया गया। क्योंकि ये पारिवारिक कानून विवाह, परिवार और सम्पत्ति में स्त्रियों को पुरुषों से कम व भेदभावपूर्ण अधिकार देते हैं। भारतीय समाज में अलग–अलग समुदायों के अपने भिन्न–भिन्न धार्मिक मान्यताएं तथा रीति–रिवाज हैं। साथ ही यह सर्वविदित है कि स्त्रियों के सन्दर्भ में अनेक कुप्रथाएं इन्हीं धार्मिक मान्यताओं से जुड़े होते हैं। बाल–विवाह, बहुविवाह, देवदासी प्रथा, बहुविवाह, असमान उत्तराधिकार, इत्यादि सामाजिक कुरीतियाँ इन्हीं धार्मिक मान्यताओं द्वारा जुड़ी हुई थीं। ऐसे में संविधान द्वारा धर्म के आधार पर बने पारिवारिक कानूनों को मान्यता प्रदान करके भारतीय समाज में स्त्रियों को दी गई समानता तथा स्वतंत्रता के अधिकार में बाधा उत्पन्न की गई है। क्योंकि सभी धर्म अपनी–अपनी धार्मिक मान्यताओं के आधार पर निजी कानूनों का गठन करना चाहते हैं। इन सब में सबसे अधिक हानि महिलाओं की होती है। क्योंकि धार्मिक मान्यताओं से जुड़े निजी कानूनों के अन्तर्गत समाज द्वारा महिलाओं पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया जाता है। धर्म के आधार पर इस प्रकार की असमानता आज तक विद्यमान है। हिन्दू पर्सनल लॉ, मुस्लिम पर्सनल लॉ, इत्यादि में कानूनों के अलग–अलग स्वरूप ने समानता के सिद्धान्त को वास्तविक रूप में स्थापित नहीं होने दिया है। ऐसे में महिलाओं की स्थिति में भी एकरुपता नहीं आ सकी है और उनका एकसमान विकास नहीं हो पा रहा है।

भारतीय संविधान का अनु0 44 यह कहता है कि सरकार सम्पूर्ण भारतवर्ष में नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने का प्रयास करेगी। यह प्रावधान अभी तक लागू नहीं हो सका है। समान नागरिक संहिता का मुद्दा धर्म से जुड़ा होने के कारण अत्यन्त संवेदनशील मुद्दा बना हुआ है।

तृतीय– भारतीय संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों में अनु0 51क(ड़) में यह व्यवस्था की गई है कि ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हैं। परन्तु इसकी मूल भावना को आजतक समझा नहीं गया।

समाज में व्यापक रूप से संरचनात्मक हिंसा व्याप्त है। केवल उन्हीं गुणों को महत्व दिया जाता है और पुरस्कृत किया जाता है जो गुण पुरुष से सम्बन्ध रखते हैं। स्त्रियोचित्त कार्यों तथा योगदानों को समाज में वह मान्यता नहीं मिली है जो उसे मिलनी चाहिए।

निष्कर्ष–

लैंगिक न्याय के अन्तर्गत महिलाओं के शोषण का उन्मूलन कर उनके लिए एक ऐसी परिस्थिति के निर्माण की बात की जाती है जिसमें वे स्वतंत्रता तथा सम्मानपूर्वक अपने जीवन का निर्वाह कर सकें। लैंगिक न्याय, न्याय का एक ऐसा स्वरूप है जिसमें महिलाओं को मनुष्य के रूप में स्थापित करने की बात की गयी है तथा महिला अधिकारों को मानव अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान करने पर बल दिया गया है। लैंगिक न्याय का उद्देश्य एक ऐसी संरचना का निर्माण करना है जिसमें महिलाओं हेतु उचित व न्यायपूर्ण परिस्थितियों का निर्माण किया जा सके। लैंगिक न्याय समाज में मानवकृत नकारात्मक विभेदों को समाप्त करके एक ऐसे समाज की स्थापना पर बल देता है जहाँ स्त्रियों की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास हो सके। अर्थात लैंगिक न्याय स्त्रियों और पुरुषों के बीच समानता स्थापित करने का एक प्रयास है। इस अवधारणा के अन्तर्गत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं की समान रूप से भागीदारी तथा नियंत्रण पर बल दिया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- अमर्त्य सेन, न्याय का स्वरूप, नई दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज, 2010.
- साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दें, नई दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, 2001.
- जार्ज एच. सेबाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, नई दिल्ली, एस चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा0) लि0, 1987.
- डा0 पुरुषोत्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2003.
- नीरा देसाई ''वुमन इन मॉडर्न इण्डिया'' मुम्बईः वोरा एंड कम्पनी पब्लिशर्स, 1957.
- मेरी वोल्सटनक्राफ्ट, स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2003.
- रेणु दिवान, आजादी की महिलाएं, दिल्ली, एजूकेशनल बुक सर्विस, 2010.
- वी. एन. सिंह, जनमेजय सिंह, आधुनिकता एवं महिला सशक्तिकरण, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, 2010.
- विल किमलिका, समकालीन राजनीति–दर्शनः एक परिचय, नई दिल्ली, डॉर्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा. लि. , 2010.